# कालिदास के नाटकों में वर्णित चित्रकला

**डॉ0 स्मिता अग्रवाल***

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति अत्यधिक प्राचीन एवं जीवन्त है। यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति में अध्यात्म, धर्म एवं कला की सुगन्ध रची–बसी है। जितना अधिक महत्त्व अध्यात्म एवं धर्म का है, उतना ही महत्त्व 'कला' का भी स्वीकार किया गया है। 'कला' भारतीय संस्कृति का महनीय अप्र है जिससे भारत को विश्व संस्कृतियों में सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ है। हमारी संस्कृति में मानव मात्र के लिए साहित्य, संगीत एवं कला में निष्णात होना परम आवश्यक बताया गया है।

साहित्य सङ्गीत कला विहीनः।
साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीनः।।

कला का चरम उद्देश्य परमानन्द की प्राप्ति को माना गया है–

विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला परा।
लीलते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला।।

'कला' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है– 'यथा कलां यथा शफम् यथा ऋणं संनयामासि'। वैदिक वाङ्मय में 'कला' शब्द का प्रयोग कार्य–कौशल, हुनर या शिल्प के अर्थ में हुआ है, परन्तु परवर्ती साहित्य में 'शिल्प' एवं 'कला' का यथार्थ रूप में ही प्रयोग हुआ है। परमात्मा की सृष्टि को भी उसकी एक कला कहा गया है। आचार्य कौटिल्य ने निपुणतापूर्वक कार्य करने की क्रिया को 'शिल्प' कहा। वात्स्यायन मुनि ने उन्हें ही 'कला' के नाम से अभिहित किया। वर्तमान में 'कला' शब्द ही लोकप्रिय एवं प्रचलित है। कला के कई अर्थ है–

1. कला कल्–गतौ संख्या ने च से निष्पन्न है। गत्यर्थक में कला सृजन की वह प्रक्रिया है जो कलाकार की चेतना को भौतिक धरातल से उठाकर शाश्वत चिरन्तन आनन्द की ओर ले जाती है।
2. कल् को संख्यानार्थक मानने पर संख्याने का अर्थ है– मनन, चिन्तन, अन्तदृष्टि की अभिव्यक्ति ही है।
3. कला का अर्थ 'कं सुखं लाति इति कला' भी है। यह सुख और आनन्द की निर्झरी है। 'क' प्रजापति का वाचक भी है– 'प्रजापतिर्वै कः'। प्रजापति सुखस्वरूपा है, आनन्द स्वरूप है।

**शैक्षणिक परामर्शदाता (संस्कृत) उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद**



'कला' शब्द का अर्थ कतिपय प्रसंगों में 'कलाकृति' भी होता है। 'कल्', धातु से निष्पन्न भाव–प्रक्रिया के अनुसार 'कल्यते अस्याम्' अर्थ भी कला का किया जा सकता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कला के लिए 'शिल्प' और कलाकार के लिए शिल्पी शब्द का ही अधिक प्रयोग होता था। ऋग्वेद, शतपथ, ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, सांख्यान ब्राह्मण तथा अथर्ववेद में 'कला' शब्द का प्रयोग प्रायः कार्य–कौशल, हुनर या शिल्प अर्थ में हुआ है। प्राचीन साहित्य शिवस्वरूपविमर्शिनी में इसका प्रयोग ललित कला के अर्थ में हुआ है। आचार्य क्षेमराज के शब्द में–

''कलयति स्वरूपमावेशयति वस्तुनि वा
तत्र–तत्र प्रमातरि कलनमेव कला।।'[1]

अर्थात् नव स्वरूपसंवित् वस्तुओं में या प्रमाता में स्व की, आत्मा को परिमित करती है–इसी क्रम का नाम कला है।

ऋषि वात्स्यायन द्वारा कामसूत्र में वर्णित सभी 64 कलाएँ नागरिकों में लोकप्रिय नहीं थी। इनमें से कुछ ललित कलाएँ जैसे– चित्रकला, संगीत कला आदि का तथा अधिकांश कौशल जैसे–प्रहेलिका, माला गूँथना आदि कार्यों में निष्णात व्यक्ति सुसंस्कृत माना जाता था तथा नागर–जीवन में उनका योगदान होता था।

कला एक सामान्य कर्म न होकर बुद्धि कौशल से परिचालित, निपुणता से संसाधित सुन्दर सुरूचिपूर्ण कर्म ही कला है। कला का सम्बन्ध सौन्दर्य, लालित्य एवं रस के साथ–साथ कार्य–कौशल से भी है।

कलाओं के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सूची शुक्ल यजुर्वेद के 30वें अध्याय में प्राप्त होती है। ऋग्वेद में 'द्युतकला' का संकेत प्राप्त होता है। 'अक्षसूक्त' या 'कितक्यूक्त' में एक जुआरी का वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद में 28 शिल्पियों का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य कौटिल्य ने इस सूची में आठ शिल्पकारों को जोड़ा है। ललित विस्तर में 86 कलाओं का उल्लेख मिलता है। शुक्रनीति में 64 कलाएँ बताई गई हैं परन्तु उनके नाम महर्षि वात्स्यायन द्वारा उल्लिखित चौंसठ कलाओं के नामों से भिन्नता रखते हैं। आचार्य वात्स्यायन द्वारा इन आचार्यों द्वारा परिगणित 64 कलाएँ ही लोक में अधिक प्रचलित एवं विद्वानों द्वारा मान्य हैं। उल्लिखित कलाओं के नामों के अतिरिक्त–प्रतिमाला, काव्यसमस्या–पूरण, पुष्पशकटिका तथा वस्त्रगोपन आदि कलाओं का भी उल्लेख संस्कृत वाङ्मय में प्राप्त होता है, कला शब्द का प्रमाणित प्रयोग आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में दिखाई देता है – 'न तज्ज्ञानं, नतच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला'।

यद्यपि आचार्यों ने इन कलाओं में की विभाजक रेखा नहीं खींची परन्तु आधुनिक आचार्यों ने कलाओं को दो श्रेणियों– ललित कलाएँ तथा उपयोगी कलाएँ

में विभक्त किया है। यथा संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकर्म (आलेख्य) आदि ललित कलाओं की श्रेणी में हैं जबकि तक्षण, तक्षकर्म, वास्तुविद्या, वृक्षायुर्वेद आदि उपयोगी कलाएँ हैं। नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत् द्वारा प्रयुक्त कला का आशय संभवतः 'ललित कला (Fine Art)' अर्थ में तथा शिल्प का आशय संभवतः उपयोगी कला (Useful Art) लिया है।

आनन्द से परिपूर्ण होकर स्मृति व भावना की तूलिका एवं रंगों के माध्यम से कौशलपूर्ण प्रयोग द्वारा सजीवता, भावाभिव्यक्ति एवं सादृश्य के बोध की प्रक्रिया ही चित्र है। चित्रकला विषय के विशेष रूप से ग्रहण का कारण मन में उत्पन्न होने वाली रति से है। संस्कृत साहित्य के पात्रों में चित्र के द्वारा रति की उत्पत्ति बतलाई गई है। रति से ही रस की उत्पत्ति होती है। भर्तृहरि ने अपने 'शृंगारशतक' में स्त्री को सौन्दर्य का परम प्रतीक माना है। स्त्री का सम्पूर्ण शरीर कलाओं की समष्टि है और वही साहित्य का प्राणस्वरूप रस है–'उर्वशीं सृजतः पूर्वं चित्रसूत्रं नृपात्मज'। यौवना स्त्री के अंग–प्रत्यंग क आकर्षण संस्कृत साहित्यकारों के साथ ही चित्रकारों को भी विषय प्रदान करता है।

काव्य और चित्र में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है–काव्य बोलता हुआ चित्र है और चित्र मूक काव्य है। चित्रकार कविता के भाव के अनुसार चित्र बनाता है तो कवि चित्र के भाव के अनुसार काव्य की रचना करता है। काव्य और भाव चित्रकला में समानता या तुलना का जो आधार है, वह उनमें विद्यमान दृश्यन्त (प्रेक्षत्व) या चित्रतत्व है। यह दृश्यत्व या रूपात्मकता चित्रकला की प्रमुख विशेषता है। कला भाषा से भी प्राचीन मानवीय उत्पत्ति है। चित्रकला में रंग–रेखा के द्वारा भाव को प्रस्तुत किया जाता है और काव्य में कवि भावों–अनुभूतियों के लिए शब्दों का प्रयोग करता है। चित्रकला में रेखाओं, रंगों की सुव्यवस्थित योजना के द्वारा अनुभूति–बिम्बों का अंकन होता है। चित्रकार इनके माध्यम से हमारी सौन्दर्य अनुभूतियों को जाग्रत करता है। कला के माध्यम से जो अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है उसे ही परमानन्द की संज्ञा दी गयी है। सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरणों में ही मनुष्य ने अनेक रूपों में कला को अपनाया था।

प्राचीन वाङ्मय कलाओं के वर्णनों से भरे पड़े हैं। संस्कृत कवियों – आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर विभिन्न कलाओं का वर्णन किया है। अन्य कलाओं के साथ–साथ चित्रकला को भी संस्कृत कवियों ने सम्मान्य स्थान प्रदान किया है। महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, नाटकों, कोशों, पुराणों, जातकों आदि सभी ग्रन्थों में चित्रकला की विधि एवं विधा की व्याख्या की गई है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में 'चित्रसूत्र' प्रकरण में अन्य कलाओं की अपेक्षा चित्रकला को श्रेष्ठ बताया गया है–

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।
मांगल्यां प्रथमं ह्येतरं गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।।[2]



कविकुल शिरोमणि कालिदास की रचनाएँ भी इन वर्णनों से अछूती नहीं हैं। कालिदास के काव्यों के वर्णन से हमें स्थान–स्थान पर उनके कलात्मक बोध का परिचय प्राप्त होता है। कालिदास के काव्यों में शृंगार की प्रधानता होने के कारण ललितकलाओं का वर्णन प्रधान रूप से प्राप्त होता है। ललित कलाओं के साथ–साथ अन्य कलाएँ जैसे– कामकला, गज–अश्व–रथ कौशल, मृगया, कृषि आदि का वर्णन भी प्राप्त है। कालिदास के अधिकांश, नाटकों–काव्यों में शृंगार की प्रधानता होने के कारण चित्रकला, संगीत–नृत्य–वाद्य आदि सुकोमल कलाओं का वर्णन अधिक प्राप्त होते हैं। कालिदास के नाटकों में प्राप्त चित्र तथा चित्रकला के प्राप्त वर्णनों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज को चित्रकला के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान प्राप्त था। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में चित्रकला के सम्बन्ध में अनेक सुन्दर वर्णन दुष्यन्त तथा अन्य की उक्तियों के माध्यम से प्राप्त होते हैं– 'नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता सन्दिष्टा–माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र में चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति। साधु वयस्य! मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। .... प्रदेशेषु। अहो, एषा राजर्षेर्निपुणता। इन कथपोकथन के द्वारा तथा निम्न दो श्लोकों के द्वारा स्पष्ट रूप तत्कालीन समाज के उच्च वर्ग के द्वारा चित्रकला की बारीकियों को ध्यान में रखकर चित्र निर्माण करने की परम्परा का ज्ञान होता है–

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्।।[4]
तथा– साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं चित्रार्पिता ....।[5]
कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभिमतो निषण्णहरिणागौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामननयं कण्डूयमानां मृगीम्।।[6]

अर्थात् चित्र के कोरों पर मेरी पसीजी हुई अंगुलियों के काले धब्बे पड़े हुए हैं और मेरी आँखों से जो आँसू टपका था, उसकी कूँची द्वारा शकुन्तला के गाल पर का रप्र उभर आया है। पुनः राजा अपने अपूर्ण चित्र में प्रकृति के अन्य तत्त्वों को भी चित्र पर अंकित करने का मन्तव्य बताते हैं। इसके साथ राजा शकुन्तला के आभूषणों को भी चित्रित करने की बात करते हैं जिनका उन्हें विस्मरण हो गया था– 'अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेत विस्मृतमस्याभिः।'[7] अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के छठे अंक में चित्रकला का वर्णन प्राप्त होता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रारम्भ में ही कालिदास ने नाट्यगृह के वर्णन में उसे आलेख्य (चित्रकला) के समान चित्ताकर्षक (चित्त को आकर्षित करने वाला) बताया है 'रागनिविष्ट चित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः'।[8] कालिदास ने शकुन्तला के रूप का वर्णन करने में उसे यथार्थ से भिन्न रूप का संघात करने में अपनी अद्भुत

प्रतिभा का परिचय दिया है। द्वितीय अंक में शकुन्तला का वर्णन इस प्रकार किया है मानो ब्रह्मा ने पहले उसका चित्र निर्माण कर पुनः उसमें प्राणों का संचार किया हो– 'चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु'।[9]

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में कालिदास ने विरहव्यथा से शोकाकुल शकुन्तला का चित्र की भांति चित्रांकन किया है तथा दोनों सखियों के माध्यम से उसका चित्रलिखित के समान वर्णन किया है– 'वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयाऽऽत्मानमपि नैषा विभावयति[10]।'' आभूषणों को शकुन्तला को धारण करवाने के प्रसंग में भी चित्रफलक का वर्णन प्राप्त होता है। दोनों सखियाँ कि वनकन्या होने के कारण आभूषण आदि के प्रति अज्ञान हैं। अतः चित्र में चित्रित आभूषण को देखकर वे शकुन्तला को आभूषण पहनाती हैं– 'अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाप्रेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः[11] ।'

विक्रमोर्वशीयम् नाटक के द्वितीय अंक में उर्वशी पर आसक्त राजा की उर्वशीदर्शन की व्याकुलता को देखकर विदूषक राजा को नींद में उर्वशी का चित्र बनाकर देखने का परामर्श देता है–'स्वप्नसमागमकारिणीं निद्रां सेवतां भवान्। अथवा तत्रभवत्या उर्वश्याः प्रतिकृतिं चित्रफलक आलिख्यावलोकयंस्तिष्ठतु'[12]। राजा स्वयं को कामवाणों से पीड़ित बताते हुए कहते हैं कि वे स्वप्न समागम करने में भी असमर्थ है क्योंकि चित्र पूरा करने से पूर्व ही उनकी आँखें अश्रुपूरित हो जाएँगी और चित्र अधूरा रह जाएगा–

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां।
मम नयनयोरुद्वाष्पत्वं सखे न भविष्यति।।[13]

मालविकाग्निमित्रम् नाटक के प्रथम अंक में रानी द्वारा किसी चित्रकार से अपने चित्र बनवाने का प्रसंग है जिसमें रानी के बगल में मालविका चित्र भी अंकित है। रानी द्वारा नवीन रंगों (गीले रंगों) वाले चित्रों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते समय राजा भी उन चित्रों को देखकर मानविका के सम्बन्ध में प्रश्न किया– 'चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठति भर्ता चोपस्थितः। उपचारानन्तरमेकासनोपविष्टेन भर्त्रा चित्रगताया देव्याः परिजनमध्यगतामासन्नदारिकां दृष्टवा देवी पृष्टा। अपूर्वेयं दारिका देव्या आसन्ना आलिखिता किन्नामधेयेति।'[14] वसुमती के द्वारा चित्रफलक में उपस्थित मालविका का नाम ज्ञात होने पर राजा ने मालविका की रूप–माधुरी के दिग्दर्शन के लिए उसका नृत्य करवाया। विदूषक एवं राजा दोनों ने ही सशरीर मालविका को चित्र से अधिक सुन्दर पाया– 'न खल्वस्याः प्रतिच्छन्दात्परिहीयते मधुरता।'



चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशङ्कि मे हृदयम्
सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता।।[15]

चतुर्थ अंक में प्रतिकृति चित्र (व्यक्ति–चित्र) का वर्णन है। राजा कहते हैं मानो मेरा चित्र दिखला रही हैं– 'शङ्के मे प्रतिकृतिं निर्दिशति'। चित्र में राजा विद्यमान है– 'नन्वेष चित्रगतो भर्ता'। मालविका चित्र में राजा को देखकर अपने मन का भाव व्यक्त करती है कि उसका चित्र राजा को देखकर भरा नहीं है साथ ही इरावती की ओर राजा की प्रेमपूर्ण दृष्टि को देखकर ईर्ष्या भी करती है– 'सखि! तदा सांभ्रमदृष्टे भर्तू रूपे यथा न वितृष्णास्मि तथाद्यापि मया भावितोऽवितृष्णदर्शनो भर्ता। चित्रगतं भर्तारं परमार्थतः संकल्पप्यासूयति।'[16] इसके साथ ही राजा भी वहाँ उपस्थित होकर चित्र में अंकित उसके भाव को देखकर कुपित न होने की विनती करता है– 'कुप्यसि कुवलचनयने चित्रार्पितचेष्टया किमेतन्मे'।[17]

इस प्रकार कालिदास के नाटकों में अनेक कलाओं का दिग्दर्शन होता है, परन्तु नाटकों में वर्णित चित्रकला के प्रसप्रों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि निश्चय ही तत्कालीन समय में चरम कोटि पर थी। कालिदास ने न केवल प्रकृति का वरन् मन के भावों का भी चित्रण किया है।

**सन्दर्भ सूत्र–**


1. समीक्षा शास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, काशी सं0 2010, पृ0 206
2. चित्रसूत्र–43/48
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– छठा अङ्क, गद्य भाग
4. वही– 6–15
5. वही– 6–16
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 6–17
7. वही– छठे अङ्क, का गद्य भाग
8. वही– प्रथम अङ्क, का गद्य भाग
9. वही– 6/9 (पूर्वार्द्ध)
10. वही– चतुर्थ अङ्क का गद्य भाग।
11. वही– चतुर्थ अङ्क का गद्य भाग।
12. विक्रमोर्वशीयम्–द्वितीय अङ्क का गद्य भाग।
13. विक्रमोर्वशीयम्– 2/10
14. मालविकाग्निमित्रम्–प्रथम अङ्क का गद्य भाग
15. मालविकाग्निमित्रम्– 2/2
16. मालविकाग्निमित्रम्– चतुर्थ अङ्क गद्य भाग
17. मालविकाग्निमित्रम्– 4–10 (पूर्वार्द्ध)